## धरती को बचाने की फिक्र

माइक पांडे
चर्चित पर्यावरणविद

**विकास के नाम पर बड़े औद्योगिक घराने और नेतागण धरती का उसकी क्षमता से परे जाकर शोषण कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन, गर्म होते हमारे महासागर, समुद्र तल का बढ़ता स्तर और बढ़ती अम्लीयता आज ऐसी सच्चाई है, जिससे हमारी खाद्य सुरक्षा और धरती के पूरे जीवन पर खतरा मंडरा रहा है।**

**पांच** दशक पहले 22 अप्रैल, 1970 को पहली बार पृथ्वी दिवस मनाया गया था, ताकि पर्यावरण को हो रहे नुकसान के रूप में हमारे अपने ग्रह के भविष्य को मिल रही चुनौतियों की ओर गंभीरता से ध्यान आकर्षित किया जा सके। यहां तक कि उस समय भी बेहिसाब ढंग से लैंड यूज बदले जा रहे थे, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, पारिस्थितिकी के लिहाज से संवेदनशील क्षेत्रों में अतिक्रमण, वन्यजीवों के प्रति अपराध और अंधाधुंध विकास शुरू हो चुका था, जिससे पृथ्वी के सीमित संसाधनों को नुकसान पहुंचने लगा।

दुर्भाग्य से ये सारी चिंताएं और मुद्दे कम होने के बजाय बरस दर बरस कई गुना बढ़ते चले गए। यह ग्रह, जिसे हम अपना घर कहते हैं, नष्ट हो रहा है। पृथ्वी सचमुच गंभीर संकट से गुजर रही है। लेकिन यह सुन कौन रहा है? धरती की सर्वाधिक बुद्धिमान प्रजाति होने के बावजूद हम हमेशा की तरह 'यह सब तो चलता रहता है' वाले रवैये पर कायम हैं। पर्यावरण, वन्यजीव और प्राकृतिक संसाधन हमारी प्राथमिकताओं में सबसे निचले क्रम पर हैं। मगर हमारा ग्रह आज किस संकट में है और इसका हम पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह सवाल मौजूं हो गया है। विकास के नाम पर बड़े औद्योगिक घराने और नेतागण धरती का उसकी क्षमता से परे जाकर शोषण कर रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन, गर्म होते हमारे महासागर, समुद्र तल का बढ़ता स्तर और बढ़ती अम्लीयता आज ऐसी सच्चाई है, जिससे हमारी खाद्य सुरक्षा और धरती के पूरे जीवन पर खतरा मंडरा रहा है।

ऑस्ट्रेलिया की प्रवाल भित्ति की महान दीवार के एक बड़े हिस्से को पहले ही काफी नुकसान हो चुका है। इसी तरह से दुनिया भर के 70 फीसदी प्रवाल या मूंगा को बढ़ते तापमान से नुकसान हो सकता है। जबकि कोरल या प्रवाल मछली की चार हजार प्रजातियों के प्रजनन का आधार हैं। मछली एक बड़ा खाद्य संसाधन है। मछली उद्योग हमारे समुद्रों से सालाना 12 करोड़ टन मछली निकालता है। मगर यह दुखद है कि इसमें से चार करोड़ टन बाई-कैच यानी ऐसी प्रजातियां भी बाहर आ जाती हैं, जिन्हें दोबारा फिर समुद्र में डालना पड़ता है। जाल में फंसी ये ऐसी मछलियां या समुद्री प्रजातियां होती हैं, जिनसे बहुत लाभ नहीं होता। इसके बाद झींगा और अन्य आकर्षक प्रजाति के लिए दोबारा नेट डालना पड़ता है। सालाना मरी मछलियों और मृत समुद्री प्रजातियों का 30 अरब किलो से भी ज्यादा का ढेर दोबारा समुद्र में डाल दिया जाता है। इनमें हजारों की संख्या में डॉल्फिन, सील, कछुए और व्हेल शामिल होती हैं। मछली पकड़ने में गिरावट का असर दुनिया भर के कई गरीब तटीय मछली पकड़ने वाले समुदायों द्वारा महसूस किया जा रहा है।

अमर उजाला TREE OF LIFE

पृथ्वी दिवस 22 अप्रैल से अमर उजाला एक अभियान शुरु कर रहा है, तमाम पाठक जिसका हिस्सा बनेंगे।

खाद्य सुरक्षा को एक गंभीर खतरा समुद्रों में अम्ल की मात्रा बढ़ने से जुड़ा हुआ है। बिना ट्रीटमेंट के जो गंदगी और मानव अपशिष्ट तथा प्लास्टिक समुद्र में बहा दिए जाते हैं, यह उसका नतीजा है। रोजाना अरबों गैलन गंदगी समुद्र में बहा दी जाती है। हमारे समुद्रों में जाने वाला प्लास्टिक प्रदूषण फैलाने वाला सबसे बड़ा कारक है। प्लास्टिक का उपयोग शुरू हुए मुश्किल से पचास वर्ष हुए हैं, लेकिन इस ग्रह में उसी की वजह से सबसे अधिक प्रदूषण होता है। इस ग्रह का हर कोना एक बार इस्तेमाल किए गए प्लास्टिक के कूड़े से प्रदूषित है। चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड, फिलीपींस और वियतनाम दुनिया में प्लास्टिक से सर्वाधिक प्रदूषण फैलाने वाले देशों में शुमार हैं। समुद्रों का तकरीबन एक तिहाई हिस्सा प्लास्टिक की गंदगी से अटा पड़ा है। समुद्र का पानी प्लास्टिक को विघटित कर देता है। प्लास्टिक के छोटे-छोटे कणों और अणुओं को मछलियां खा जाती हैं और इनके अंश मछलियों के शरीर में पाए गए हैं। इस तरह प्लास्टिक हमारी खाद्य श्रृंखला में शामिल होकर हमारी डाइनिंग टेबिल तक पहुंच जाता है। इससे मानव जीवन के लिए खतरा बढ़ता जा रहा है।

रोजाना अरबों गैलन बिना ट्रीटमेंट की गई गंदगी समुद्र में प्रवेश कर जाती है। जैसा कि ऊपर लिखा है कि ये समुद्र में अम्लता तो बढ़ाती ही है, इससे समुद्री जीवन को नुकसान पहुंचता है। वैज्ञानिकों का आकलन है कि यदि इसी दर से हम समुद्र को प्रदूषित करते रहे और नुकसान पहुंचाते रहे, तो 2048 तक समुद्र से मछलियां गायब हो जाएंगीं। तमाम तरह की प्रौद्योगिकी विकसित करने के बावजूद हमारा लालच कम नहीं हुआ है, बल्कि बढ़ता ही जा रहा है। कुछ और की मनुष्य की इच्छा ने हमें गर्त के मुहाने पर ला खड़ा किया है। हमारा ग्रह हर वर्ष दस हजार प्रजाति के पौधों और जीव-जंतुओं को खो देता है। ब्रह्मांड में पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है, जिसे जीवन उपहार में मिला है। और अधिक की हमारी चाहत के बीच, हम यह भूल गए हैं कि दुनिया के सारे अमीर मिलकर पानी की एक बूंद तक पैदा नहीं कर सकते।

हम सबके लिए जरूरी है कि पर्यावरण सुरक्षित रहे। जरूरत है एकजुट प्रयास की, ताकि पृथ्वी का संतुलन और पृथ्वी के अस्तित्व को विप्लवों से बचाया जा सके।

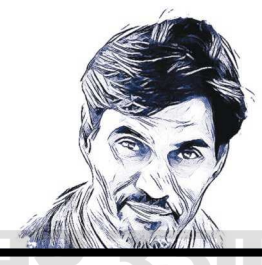

नमस्कार
यशवंत व्यास

## धर्म युद्ध में प्रज्ञा चक्षु

इतना लाइव हास्य-व्यंग्य हो गया है कि अलग से कुछ भी लिखने का कौशल ही बेकार गया। भ्रष्टाचार के आरोपों में जेल में पड़े लोग जेल से ही क्रांतिकारी हो रहे हैं, जमानत पर बाहर घूम रहे लोग वायरल सत्य के उद्घोषक हो रहे हैं और चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित कर दिए गए लोग सीना चीरकर सैद्धांतिक सहयोगियों के मंच पर लोकतंत्र के शूरवीर हुए जा रहे हैं। कोई तिनका कल तक बाढ़ में बहता किसी शिवलिंग पर जा उतरा था, आज वह किसी और ठिकाने पर नई बाढ़ और नए शंकरजी के लिए बाढ़ और तिनके के मुहावरे पर तालियां ठोक रहा है।

सबसे दिलचस्प व्हाट्स एप क्रांति है। ये आपके फोन पर उतर ही आती है। एक धुरंधर जो कभी किसी के भयंकर समर्थक हुआ करते थे, अब भयंकर रूप से उनसे देश बचाना चाहते हैं। वजह? पांच साल होने को आए उनका कोई समर्थन मूल्य ही तय नहीं हुआ। अभी वे जातिविहीन समाज के विप्लवी प्रवक्ता हैं। कल उन्होंने व्हाट्स एप संदेश भेजा, 'अपने क्षेत्र में जातियों का जो गणित है, उस हिसाब से कुल जातियां यों बैठती हैं- ब्राह्मण, वैश्य, राजपूत, एससी-एसटी और मुसलमान।' मुसलमान एक साथ वोट करेंगे ही और अगर ब्राह्मणों में टूट हो जाए, तो एससी-एसटी और मुसलमान मिलकर हवा बदल देंगे। उनके हिसाब से मुसलमान धर्म नहीं, एक जाति थी और बाकी चार जातियां एक हिंदू धर्म नहीं, चार समुदाय थे। और इनको हिलाकर वे लोकतंत्र का धर्म बचा लेना चाहते थे। पर थे पक्के धर्म निरपेक्ष, पक्के जाति विरोधी।

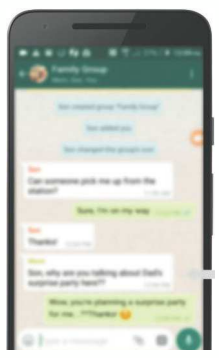

**प्रज्ञा, चक्षु, धर्म और युद्ध- ये सब दिग्विजय के ही प्राथमिक चरण हैं। अंतिम चरण में करुणा है। और करुणा जो है, व्यंग्य का विषय नहीं है- उसकी अंतर्धारा है।**

क्रांति का हुक्का ऐसा ही होता है, गुड़गुड़ाते कहीं हैं, आग कहीं लगी है, और धुआं जो है, कहीं और रखे पानी से छनकर आ रहा है। अभी कल तक प्रियंका चतुर्वेदी कांग्रेस में बैठी, स्मृति ईरानी की डिग्री बांच रही थीं, बड़ी क्रांतिकारी लग रही थीं। शिवसेना में पहुंचते ही क्रांति को मोक्ष प्राप्त हो गया। एक महान सज्जन भाजपा से निकले, कांग्रेस में गए और सपा में अपनी श्रीमतीजी को भेजकर क्रांति की अवधारणा समझाने लगे। इसे राजनीति की आध्यात्मिक साधना में शक्तिपात कहते हैं। यह परमावस्था के अनुभव का परिणाम है।

कौन नहीं जानता कि मुंबई पर हुए आतंकी हमलों में आरएसएस की साजिश की पत्री बांचने वाले दिग्विजय सिंह को बाटला हाउस मुठभेड़ के शहीद मोहनचंद से ज्यादा आजमगढ़ के मासूम याद आते रहे हैं। उन्होंने तो हेमंत करकरे से बातें होने का हवाला भी दिया है। अब साध्वी प्रज्ञा जब सामने उतर आई है, तो संसदीय क्षेत्र का विकास तो एक तरफ रह गया, यातनाएं, षड़यंत्र और आतंक का ही सस्वर पाठ हो रहा है। लगता ऐसा है, जैसे पांच साल पहले तो देश में नफरत, बम विस्फोट, दंगे आदि का किसी ने नाम ही नहीं सुना था। उससे पहले तो सब चैन से इंडिया गेट पर बैठे लइया खाते रहते थे और मनोज कुमार के गीत सुनकर झूमते रहते थे। अब संकट आ गया है तो संघर्ष में कूद पड़े हैं। अब तो शपथ ले ली है। 'हरा आतंकवाद' और 'भगवा आतंकवाद' आज ही परमगति को प्राप्त हो जाने हैं।

विकास वगैरह का क्या है, आज नहीं तो कल कर लेंगे।

एक बार महीनों पहले एक उदारवादी बौद्धिक गोवा पहुंचे। सुबह-सुबह उतरते ही उन्होंने एक फोटो ट्वीट किया, 'वाह, भाजपा के राज के बावजूद बीफ का शानदार नाश्ता।' जाहिर है, उन्हें आधे घंटे में समझ आ गया कि मजेदार नाश्ता व्यक्तिगत चीज है और वे मजे में चाहे जो खाने को आजाद हैं, मगर उसे दिखा-दिखाकर फोटो चिपकाने के साथ जो टिप्पणी उसमें चिपकाई गई है, वह चिढ़ाने के भाव में जाती है। वे संजीदा बौद्धिक थे, बारीकी एकदम समझ में आ गई। उन्होंने फोटो तुरंत हटा लिया। उनकी ईमानदारी ने कई का धंधा चौपट कर दिया। हजार ट्वीट क्रांतियां जन्म लेने से पहले ही मर गईं।

अब व्यंग्य लिखता हूं, तो करुणा हो आती है। अगर कोई कांग्रेस की मूर्खताओं पर जरा कुछ कहता है, तो वह 'भक्त' हो जाता है। कोई भाजपा की कमियों पर सवाल उठाता है, तो वह 'प्रेमी' हो जाता है। जैसा कि अनुभव कहता है, प्रेम अंततः शक्ति में समाप्त होता है। प्रेमी और भक्त विद्वान, अध्येता, विश्लेषक, अफसर संसद में पहुंच जाते हैं। जो नहीं पहुंच पाते, वे पलटकर और भी भयंकर क्रांतिकारी हो जाते हैं। वे सिद्धांत के झोले से टीवी चैनल पैदा कर सकते हैं, आत्मा के चूल्हे से राष्ट्र कल्याण की चपातियां सेंक सकते हैं, तर्क के रिमोट झाड़ू से कोलकाता में लाहौर और न्यूयॉर्क में दिल्ली की सफाई कर सकते हैं। वे ईडी और इन्कम टैक्स की रेड में स्वयं के भगत सिंह बनने का शुभ अवसर देखते हैं।

क्या शक है कि देश में जाति है। क्या शक है कि विभाजन से एक धर्म का अलग देश बतौर सबूत खड़ा है। क्या शक है कि दुनिया धर्म के नाम पर हो रहे आतंकवाद से जूझ रही है। क्या शक है कि समूहों की गोलबंद वोटिंग होती है। मगर इसमें भी क्या शक है कि गरीबी, अमीरी और समानता राजनीतिक सत्ताओं का सबसे प्रिय निवाला है। सत्ताएं ही सत्य निर्धारित करती हैं। इसलिए सभी सत्ता में आकर अपना सत्य 'फिक्स' कर देना चाहते हैं।

जिनके प्रज्ञा चक्षु नकली नोट और बम- दोनों बनाने वालों को दर्शनशास्त्र सप्लाई करते हैं। जो केंचुए में सांप और कबूतर में गिद्ध चीन्ह लेते हैं, उनके धर्मयुद्ध का क्या कहना?

हाल में रिश्वत में पकड़े गए एक एडीएम ने कविता संग्रह छपाया था। उन कविताओं में न्याय, प्रेम, करुणा, रिश्ते और पत्ते बहुत थे। इसी का परिणाम था कि क्रमशः न्यायालय, विवाह, अनाथाश्रम, वृद्धाश्रम और वन-विभाग तक उन्होंने रिश्वत के रास्ते खोले। पक्का है, वे आगे चलकर चुनाव लड़ेंगे।

उनके भी प्रज्ञा चक्षु खुलेंगे, वे भी धर्म युद्ध में उतरेंगे। वे भी देश बचाएंगे। बस इतना ही कि वे अभी अपने धर्म के आधार पर सांख्यिकी का अध्ययन कर रहे हैं, जहां से दावेदारी ठोक सकें। प्रज्ञा, चक्षु, धर्म और युद्ध - ये सब दिग्विजय के ही प्राथमिक चरण हैं। अंतिम चरण में करुणा है। और करुणा जो है, व्यंग्य का विषय नहीं है- उसकी अंतर्धारा है।

मणिशंकर अय्यर और गिरिराज सिंह- दोनों सुन रहे हैं ना?

## आम चुनाव : अतीत और वर्तमान

**कमलनयन बजाज ने पहले आम चुनाव में जिन बुराइयों को नजदीक से देखा था, 2019 के चुनाव में भी हम उन्हीं बुराइयों के गवाह हैं। अनेक राज्यों में कांग्रेस के बीच भारी गुटबंदी है। ऐसे ही दक्षिणपंथी पार्टियां कांग्रेस के खिलाफ झूठ फैलाने में लगी हुई हैं।**

रामचंद्र गुहा
जाने-माने इतिहासकार

हाल ही में मैं नई दिल्ली स्थित केंद्रीय अभिलेखागार में था, जहां 1951-52 में हुए पहले आम चुनाव से जुड़ी एक गोपनीय रिपोर्ट मैंने देखी। यह रिपोर्ट कमलनयन बजाज की लिखी हुई थी, जिनके पिता जमनालाल बजाज एक महान देशभक्त, परोपकारी और महात्मा गांधी के निकट सहयोगी थे। खुद कमलनयन एक सफल उद्यमी थे, जिनके कांग्रेस से बेहद आत्मीय संबंध थे। कांग्रेस ने राजस्थान के सीकर से उन्हें लोकसभा का टिकट दिया था। वह राम राज्य परिषद के प्रत्याशी के हाथों पराजित हुए, और उसके बाद उन्होंने आठ पृष्ठों की एक रिपोर्ट लिखी थी, जो पार्टी के सदस्यों के लिए थी। उस रिपोर्ट का शीर्षक था, 'आम चुनाव के साथ मेरे प्रयोग और राजस्थान से जुड़ी इसकी कुछ अनियमितताएं।' करीब सड़सठ साल पहले लिखी गई वह रिपोर्ट आज भी उतनी ही शिक्षाप्रद है।

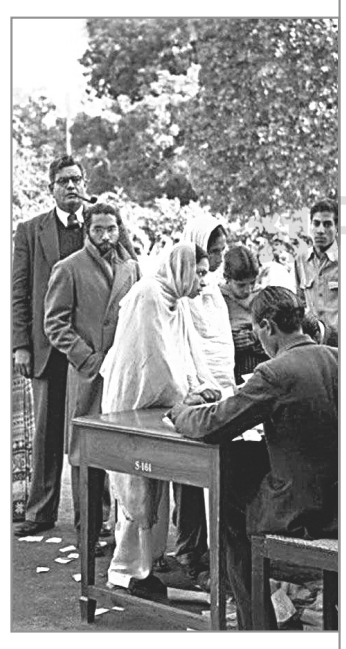

कमलनयन बजाज ने रिपोर्ट की शुरुआत ही 'कांग्रेस संगठन में दो समूहों की आपसी प्रतिद्वंद्विता से की, जिनमें एक समूह का नेतृत्व हीरालाल जी और दूसरे समूह का नेतृत्व वर्मा जी और व्यास जी कर रहे थे।' उन्होंने थोड़ी झल्लाहट के साथ लिखा था कि 'कांग्रेस के अंदर के ये दोनों प्रतिद्वंद्वी समूहों के लिए कार्यकर्ताओं की व्यक्तिगत निष्ठा पहले है और संगठन के प्रति निष्ठा उसके बाद। नतीजतन वास्तविक तौर पर कई कुशल कार्यकर्ता नेपथ्य में धकेल दिए गए और कुछ ऐसे कार्यकर्ताओं को महत्व मिला, जिनका चरित्र संदिग्ध था और जिनका संगठन के प्रति कोई उल्लेखनीय काम भी नहीं था। नेताओं की अधिकांश ऊर्जा आपसी कलह और झगड़े में ही खत्म हो जाती थी। ऐसे में, संगठन को इसका नतीजा भुगतना पड़ा और वह सरकार और जनता के बीच पहले जैसा प्रभावी संपर्क नहीं रख सका। यहां तक कि सरकार के कुछ अच्छे और उपयोगी काम भी कुछ हद तक अप्रभावी रह गए, क्योंकि कांग्रेस उन कानूनों के बेहतर प्रभाव के बारे में जनता को बताने में विफल रही।'

राजस्थान में कांग्रेस को अपने लोगों से ही चुनौती मिली, क्योंकि प्रतिद्वंद्वी समूह का नेतृत्व ऐसे लोग कर रहे थे, जो पार्टी हित के बजाय अपने हित के लिए काम कर रहे थे। और बाहर से उसे दक्षिणपंथी राम राज्य परिषद से चुनौती मिली, जो राजस्थान के समृद्ध सामंतों के करीब थी और उन्हीं से उसकी फंडिंग भी होती थी। कमलनयन बजाज ने रिपोर्ट में राम राज्य परिषद के उस भ्रामक और झूठे प्रचार के बारे में लिखा है, जिसमें परिषद के नेता खुलेआम कहते थे कि 'कांग्रेस को दिया गया एक वोट एक हजार गायों की हत्या करने के बराबर है, जबकि राम राज्य (परिषद) को दिया गया एक वोट एक हजार गायों की देखभाल करने के पुण्य के बराबर होगा।'

रिपोर्ट में आगे कमलनयन ने वोट हासिल करने के लिए अपनाए गए गैरकानूनी तरीकों का जिक्र किया है : 'खासकर ब्राह्मणों को खुले हाथ से पैसे बांटे गए, ताकि वे राम राज के लिए वोट दें। बच्चों के बीच मिठाइयां बांटी गईं, ताकि वे राम राज के नारे लगाएं। राम राज्य परिषद के कार्यकर्ताओं ने दलितों को पैसे बांटे, लेकिन कुछ जगहों पर दलितों ने पैसे लेने से इनकार करते हुए कहा कि वे कांग्रेस को वोट देंगे।'

रिपोर्ट में इसका भी जिक्र किया गया है कि हिंसा के जरिये किस तरह चुनावी प्रक्रिया को विषैला बनाया गया। उन्होंने लिखा, 'अनेक बूथों पर राम राज के कार्यकर्ता लाठी और नंगी तलवारें लिए मुस्तैद थे और मतदाताओं को खुलेआम कह रहे थे कि अगर वे परिषद को वोट देना चाहते हैं, तभी बूथ के अंदर जाएं। कार्यकर्ताओं ने गरीब और भोले-भाले मतदाताओं को धमकी दी कि वे उनका जीना मुश्किल कर देंगे। इसके बावजूद आम धारणा यही थी कि कांग्रेस जीत जाएगी। यही कारण था कि कांग्रेस को वहां भी वोट मिले, जहां जागीरदारों का वर्चस्व था।'

कमलनयन बजाज के मुताबिक, पुलिस का रवैया राजस्थान के जागीरदारों के प्रति पक्षपाती था। जैसा कि उन्होंने लिखा है, 'चुनाव के दौरान मेरा यह अनुभव रहा कि पुलिस के एक हिस्से ने, जिनमें अधिकारी भी शामिल थे, धमकी और डर का माहौल बनाने में जागीरदारों का परोक्ष रूप से सहयोग किया, उन्होंने चुनाव में धांधली का भी आरोप लगाया, 'संदेह करने के ठोस कारण हैं कि कांग्रेस और किसान सभा वाली मतपेटियों के साथ छेड़छाड़ की गई।'

कमलनयन बजाज ने देश में हुए पहले आम चुनाव के बारे में यह लिखा है। इस समय सत्रहवीं लोकसभा के लिए चुनाव हो रहे हैं। और समय के लंबे अंतराल, मतदाताओं की संख्या में हुई बढ़ोतरी, और इस दौरान हुए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के बावजूद कमलनयन 1952 के चुनाव में जिन बुराइयों से रूबरू हुए थे, 2019 के चुनाव में भी हम उन्हीं सारी बुराइयों के गवाह हैं। देश के कई राज्यों में कांग्रेस गुटबंदी की शिकार हैं, और नेता पार्टी को आगे बढ़ाने के बजाय अपनी व्यक्तिगत छवि चमकाने में लगे हैं। ऐसे ही, दक्षिणपंथी पार्टियां कांग्रेस और उसके नेताओं के खिलाफ झूठ फैलाने में लगी हुई हैं और उनकी हिंदू-विरोधी छवि बना रही हैं। फर्क बस इतना है कि अब यह झूठ मौखिक रूप से अफवाह फैलाए जाने के बजाय व्हाट्सएप के जरिये फैलाया जा रहा है। चुनाव में पैसे की ताकत अब कई गुना बढ़ चुकी है। अलबत्ता एक क्षेत्र ऐसा है, जिसमें इस दौरान अवनति के बजाय उन्नति हुई है। ईवीएम के आने के बाद मतों और मतपेटियों के साथ छेड़छाड़ आसान नहीं है।

एक फ्रेंच कहावत है, चीजें जितनी बदलती हैं, उतनी ही वे पुरानी रह जाती हैं। कमलनयन की 1952 की रिपोर्ट की आखिरी टिप्पणी से भी यह सच साबित होता है, जिसे मैं यहां उद्धृत कर रहा हूं। यह टिप्पणी है, 'आम तौर पर लोग सत्ता के गलियारों में व्याप्त भ्रष्टाचार से क्षुब्ध थे।'

**पुनश्चः** वर्ष 1957 के आम चुनाव में कमलनयन बजाज सीकर के बजाय वर्धा से खड़े हुए और जीते। इस तरह भारतीय चुनाव में उन्होंने एक और प्रवृत्ति जोड़ी, जो अब आम है। वह है, उम्मीदवारों द्वारा सुरक्षित सीट की तलाश करना।

## लोकशाही में हाशिये पर लोक

**अगले पांच साल के लिए देश के भविष्य का फैसला बड़ा फैसला है, राजनेताओं की बेसिर पैर की बयानबाजी सुन जनता सकते में है कि इनके हाथों में देश की बागडोर थमाना कितना घातक हो सकता है।**

**जनता** जब नेता चुनती है, तब स्वयं अपने को उससे जोड़ती है, उसके साथ अपना तादात्मीकरण करती है और आशा करती है कि वे उनका दुख-दर्द समझेंगे, उनकी बात सबके सामने रखेंगे, उपयोगी नीति बनाएंगे और जनहित के कार्य करेंगे। नेता वस्तुतः जनता का माध्यम होता है, जो स्वीकृत व्यवस्था में लोक-हित को सुरक्षित करने का प्रयास करता है। उसे जनता के हितों का पहरुआ होना चाहिए। नेता से यह अपेक्षा होती है कि वह निजी स्वार्थों से आगे बढ़कर देश की चिंता करे। यही बात उसके सारे प्रयासों के केंद्र में होनी चाहिए। आज यह बात फिर से दोहराने की जरूरत इसलिए भी है, क्योंकि स्वतंत्रता मिलने के बाद देश में जो राजनीतिक दौर चला, उसकी परिणति घोटालों, नैतिक मूल्यों के क्षय और घोर अकर्मण्यता की संस्कृति में हुई, जो देशहित में कदापि नहीं हैं। रसूखदार बड़े नेताओं, मंत्रियों और उच्चाधिकारियों की मिलीभगत से भ्रष्टाचार और कामचोरी की संस्कृति ही स्थापित होती गई। जो जरूरी राजनीतिक साक्षरता और परिपक्वता हमसे अपेक्षित थी, उनसे हम दूर भटक गए। राष्ट्रीय राजनीति के लिए निजी स्वार्थ से तटस्थ होकर सोचने की जरूरत थी, जिस ओर हमने कोई ध्यान नहीं दिया। इसके बजाय हमने राजनीति को अपने या अपने समुदाय के सीमित स्वार्थ को सिद्ध करने के साधन के रूप में काम में लाना शुरू कर दिया, जिसका खामियाजा आज हम सभी भुगत रहे हैं।

गिरीश्वर मिश्र
जाने-माने शिक्षाविद

आज हम विलक्षण असंगतियों के बीच जीने को अभिशप्त हैं। सुरक्षित न रख पाने के कारण हर साल लाखों टन अनाज सड़ता है, तो गरीब भुखमरी के शिकार हैं। युवा हर साल महंगी फीस देकर विदेश पढ़ने जाते हैं और अपने यहां के विश्वविद्यालयों की फीस में थोड़ी भी वृद्धि का विरोध करते हैं। पीने का पानी घटता जा रहा है और सस्ते जल शोधन के अभाव में करोड़ों लीटर पानी नित्य व्यर्थ बहाया जा रहा है। हर तरह का प्रदूषण जीवन के लिए चुनौती बनता जा रहा है। औपचारिक शिक्षा बुद्धि पर अतिशय केंद्रित है तथा हृदय और हाथ, श्रम और करुणा से उसका वास्ता घटता जा रहा है। सरकारी व्यवस्था के समानांतर प्रभावी निजी शिक्षा के संस्थान तेजी से खड़े हो रहे हैं। छात्रों और अध्यापकों समेत शैक्षिक परिसर अस्त-व्यस्त हो रहे हैं और गुणवत्ता के सवाल गौण हो रहे हैं। चूंकि शिक्षा के परिणाम तत्काल नहीं दिखते, इसलिए किसी को उनकी चिंता नहीं है।

अंग्रेजों से मुक्ति के बाद आभिजात्य से मुक्ति की आशा थी। सोचा गया था कि प्रजातंत्र में साधारण मनष्य की, लोक की प्रतिष्ठा होगी। पर हुआ उल्टा। लोकशाही में लोक को हाशिये पर धकेल दिया गया है और अब राजनीति को सिर्फ पैसेवालों के लिए आरक्षित खेल का दर्जा देकर आम जन को उससे एक तरह से बहिष्कृत ही कर दिया गया। सामाजिक भेदभाव का अद्भुत उदाहरण संसद में महिलाओं के समुचित प्रतिनिधित्व का मामला है, जो अब भी खटाई में ही है, जबकि हमारी अधिकांश महिला सांसद अपनी योग्यता और कर्मठता का लोहा मनवा रही हैं।

लोक तो तब आगे आता, जब नेता जन समुदाय से निकलता। आज की राजनीति में जनता को अपना नेता चुनने की छूट नहीं है। विभिन्न दलों के आलाकमान जिन्हें नामित करते हैं, उन्हीं महारथियों में से उसे किसी को चुनना होता है। इस तरह नेता उस पर थोपे जाते हैं। ऊपर से थोपे गए नेता कितना जन प्रतिनिधित्व करेंगे, यह संदेहास्पद रहता है। खुद उसकी दावेदारी पार्टी जिन पैमाने पर तय करती है, उनमें चयनित नेता की जाति, व्यवसाय, आय आदि ही प्रमुख होते हैं। वह समाज में वोट बटोरने वाला होना चाहिए। उससे भी ज्यादा मुश्किल है चुनावी खर्च ढोना। अब लोकसभा का चुनाव लड़ना करोड़ों रुपये का खेल बन चुका है और साधारण हैसियत वाले नेता की औकात से परे है। राजनीतिक पार्टियां चुनाव के लिए आर्थिक मदद करती हैं। लोग पार्टियों को 'गुप्त दान' देते हैं। किस्से तो ये भी सुनाई पड़ते हैं कि कुछ पार्टियां या उसके मालिक टिकट बेचते हैं। जो नेता टिकट खरीद सके, खरीद ले, उसे पार्टी का चुनाव चिह्न मिल जाएगा।

आजकल दृश्य और श्रव्य मीडिया में बहुतेरे राजनेताओं की अनियंत्रित और कभी-कभी बेसिर पैर की बयानबाजी देख-सुनकर आम जन सकते में हैं कि इनके हाथों में देश की बागडोर थमाना कितना घातक हो सकता है। कोई नेता किसी प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नहीं दे रहा। उनसे पूछा कुछ जाता है, उत्तर कुछ मिलता है। प्रत्याशियों को लेकर नितांत स्थानीय जातिगत समीकरण को आधार बनाया जा रहा है। इनके पास जनता के साथ साझा करने के लिए देश और समाज केंद्रित कोई नैरेटिव नहीं है।

अगले पांच साल के लिए भारत के राजनीतिक भविष्य का फैसला निश्चय ही एक बड़ा फैसला है, जिस पर विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का भाग्य निर्भर करेगा। झूठे वादों और भड़काऊ नारों से आगे बढ़कर यह एक निहायत जिम्मेदारी भरा काम है, जिसे संजीदगी से लेने की जरूरत है। यह अवश्य दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश का जो राग चुनावी दौर में अलापा जाता है, वह अगले पांच साल में अक्सर भुला दिया जाता है। पार्टियों के घोषणापत्र सिर्फ धोखे की पट्टी साबित हुआ करते हैं। हमें ऐसे प्रतिनिधि चुनने चाहिए, जो देश और समाज से सरोकार रखते हों तथा जिनमें नैतिकता का आग्रह और मानवीय संवेदनाएं भी हों।